Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
January-June 2024 5(1), 2159–2164

मुगलकालीन भारत में हिन्दुओं की दिशा का अध्ययन

Ritesh Kumar Singh [1], Shagufta Parveen [2]

[1] Research Scholar, Department of History, Mangalayatan University
[2] Research Director, Department of History, Mangalayatan University

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i1.2024.2249

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

ABSTRACT

प्रसिद्ध इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार का कहना है कि ''किसी भी सरकार की राजनीतिक प्रणाली की परख का मापदण्ड यह है कि उसके शासनकाल में जनता की अधिक और नैतिक उन्नति पर उसका कैसा प्रभाव पड़ा है।'' यदि हम इस मापदण्ड से भारत मुगल शासन का परीक्षण करें तो हमें कहना पडेगा कि यह बिलकुल ही असफल रहा अकबर के थोड़े–से शासनकाल में जनता की आर्थिक एवं नैतिक उन्नति अवश्य हुई थी, किन्तु 1556–1857 ई० तक सारे मुगल शासनकाल में लगभग सम्पूर्ण हिन्दू जनता का जीवन दुखमय रहा था। इस सम्बन्ध में समकालीन यूरोपीय व्यापारी और यात्री तथा समकालीन मुसलमान लेखकों ने समय–समय पर जो कुछ लिखा है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मुगल शासन हिन्दुओं के लिए एक अभिशाप था और शासन में उनका जीवन, उनकी प्रतिष्ठा और उनकी सम्पत्ति सुरक्षित नहीं थी। इतिहासकारों के शब्दों में, ''इस सारे विनाश का कारण इस्लामी धर्मान्धता है। शरियत के कट्टर कानून जब मनुष्यों की सरकार की जटिल समस्याओं को सुलझाने के लिए लागू किये जाते हैं, तब जनता की एकता तथा राजनीतिक समानता नष्ट हो जाती है और जनता सदा के लिए दो भागों में बँट जाती है। इनमें से एक भाग मुसलमान और दूसरा गैर–मुसलमान अथवा काफिर कहलाने लगता है।

Keywords हिन्दुओं की राजनीतिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता, कवि, दार्शनिक, न्यायवेत्ता आदि

1. प्रस्तावना

मुगल शासन का आधार धर्मान्धता थी अतः इस शासन में (हिन्दू संस्कृति तथा मुस्लिम संस्कृति) भिन्न–भिन्न संस्कृतियों में वैसी एकता असम्भव थी जैसी एकता विवेक और न्यायपूर्ण ब्रिट्रिश शासन में ब्रिटेन के प्रोटेस्टेण्टों और कनाडा–निवासी कैथोलिकों में रहती है। इस्लामी शासन कैथोलिक सिद्धान्त 650 ई० में बने थे और तब से इनमें कोई संशोधन नहीं हुआ था। अतः इस प्रकार की शासन–प्रणाली में प्रगतिशील कानून का बनना असम्भव था, क्योंकि ऐसा करना पैगम्बर की सर्वज्ञता में अविश्वास करना समझा जाता था'' कुछ लेखकों का मत है कि केवल कट्टर औरंगजेब के शासनकाल में ही हिन्दुओं का धर्म नष्ट हो गया था और उनके राजनीतिक अधिकार कुचले गये थे, शेष मुगल काल में हिन्दू अपने अधिकारों का उपभोग करते हुए सुखमय जीवन बिताते रहे थे। किन्तु यह मत भ्रमपूर्ण है। अकबर ने अपने शासन के अन्तिम 25 वर्षों में हिन्दू–मुसलमानों के भेदभाव की खाई को पाटने का प्रशंसनीय प्रयत्न अवश्य किया था, किन्तु शेष काल में जब से इस्लामी शासन देश में शरियत के कानूनों में हिन्दू–मुसलमानों के बीच भेदभाव के वो बीज बो दिये, जो सम्पूर्ण मुगल काल में फलते–फूलते रहे।

अकबर ने शरियत की अवहेलना करके जो नियम बनाये, उनका देश की मुस्लिम जनता ने पालन नहीं किया जहाँगीर ने तो अकबर के पूर्व–दिनों की नीति को ही अपना लिया था। अकबर के शासनकाल में हिन्दुओं की राजनीतिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता,

मुसलमान बने हुए हिन्दुओं को फिर से हिन्दू बनाने का अधिकार तथा जनता में अपने धर्म का प्रचार और कानून का समान रूप से लागू होना इत्यादि सुविधाएँ थीं, वह सब अकबर की मृत्यु के साथ विदा हो गयीं और उस समय से शाहजहाँ के शासन तक कम मात्रा में रह गयीं। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि मुगल सम्राट इस्लामी राज्य के सिद्धान्तों में विश्वास रखते थे और उसके अनुसार गैर–मुसलमानों का दमन तथा उनके धर्म का विनाश मुस्लिम सरकार का कर्तव्य समझा जाता था। जो सरकार इन कामों को नहीं करती थी, वह या तो अपवाद मान ली जाती थी या फिर उस पर कर्तव्य पालन न करने का दोश मढ़ा जाता था। जब सरकार इन कामों को करने में असमर्थ होती थी या अपने कर्तव्य का पालन नहीं करती थी, तब मुसलमान जनता सरकार के इस कर्तव्य को अपने हाथ में लेकर हिन्दुओं को दुरुस्त कर देती थी। आये दिन उद्दण्ड मुसलमान अनेक स्थानों में अपना सिर उठाते रहते थे और कानून को अपने हाथो में लेकर हिन्दू मन्दिरों को तोड़ते थे और उनके तीर्थस्थानों को भ्रष्ट किया करते थे।[1]

मुगलों के पतन–काल के दिनों में भी यह घटनाएँ आये दिन हुआ करती थी। उदाहरण के लिए, सितम्बर 1755 ई० में बनारस के काजी और मुहतसिब ने एक मुसलमान भीड़ को साथ लेकर विश्वेश्वर महादेव के उस नये मन्दिर को तोड़ दिया था, जो विश्वनाथ के प्राचीन मन्दिर के पास बनाया गया था और जिसके टूटने पर नगर में हड़ताल हो गयी। बरेली के मौलवी सैय्यद अहमद ने उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जो अत्याचार किये थे, उन्हें तो प्रायः सभी जानते हैं। इन सब बातों के कारण मुगल–शासन के सबसे अच्छे समय में भी हिन्दुओं में सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक जीवन पर प्रतिबंध लगा रहा और वह असुरक्षित बना रहा। हिन्दुओं को इस बात का सदा भय बना रहता था कि मुसलमान मुल्लाओं की अध्यक्षता में उस पर किसी समय भी हमला कर देंगे और उनके हमले के समय या तो सरकार निकम्मी साबित होगी या फिर अन्य तरह से विरोधियों को दबायेगी। दक्षिण भारत में मुसलमान बहुत कम थे और हिन्दू बड़ी–बड़ी रियासतों के मालिक थे तथा अत्याचारी का मुकाबला करने में पूर्ण समर्थ थे, अतः वहाँ पर बहुत कम अत्याचार हुए। इसके विपरीत, उत्तर भारत में हिन्दुओं के धर्म को नष्ट करना मुसलमानों का नियम बन गया था, अतः यहाँ पर हिन्दू संस्कृति या तो अर्द्ध–स्वतन्त्र हिन्दू राज्यों में या फिर देश के अन्तरिम कोने में ही फली–फूली रह सकी।[2]

दमनकारी मुस्लिम शासन का सबसे बुरा प्रभाव हिन्दुओं पर यह पड़ा कि वह न तो सच बात कह सकते थे और न लिख सकते थे। वह अपने को मुसलमानों के समान भी नहीं समझ सकते थे। इन सब कारणों से उनका इतना नैतिक पतन हो गया कि वह किसी तरह दिन काटने के लिए छोटी–छोटी धूर्तताएँ, पाखण्ड और धोखेबाजी तक करने लग गये थे। इस्लाम के सिद्धान्तानुसार शासन करने वाले मुगलों पर यह सबसे बड़ा कलंक है कि उनके शासनकाल में ही हिन्दुओं का नैतिक पतन हो गया था। अकबर के शासनकाल तथा जहांगीर के शासनकाल के कुछ वर्षों को छोड़कर साधारण हिन्दू जनता की आर्थिक दशा अत्यन्त सोचनीय थी। अकबर के समय में मालगुजारी के जो ठीक और उदार नियम बने थे, वह उसके उत्तराधिकारी के सबंध में ही समाप्त हो गये। औरंगजेब ने तो हिन्दुओं पर जजिया, यात्रा–कर और गंगा में हड्डी डालने का कर फिर से लगाकर उन पर करों का भार लाद दिया था और मुगलकालीन सम्राट औरंगजेब कर रोपण में पक्षपात करता था। शाहजहाँ और औरंगजेब ने लगान की दरें भी बढ़ा दी थीं। अकबर उपज का एक–तिहाई लगान में लेता था, किन्तु शाहजहाँ पैदावार का आधा लेने लगा था। अबुल फजल के कथनानुसार, अकबर के शासनकाल में लगान की आमदनी 13,21,36,831 रू० थी और अब्दुलहमीद लाहौरी के कथनानुसार शाहजहाँ के शासनकाल में यह बढ़कर 22,50,00,000 रू० हो गयी थी।[3]

2. ब्राह्मण

मुगलयुगीन हिन्दू समाज में ब्राह्मणों की काल्पनिक प्रतिष्ठा प्राचीन काल जैसी ही रही। ब्राह्मण कुल और गोत्र के रुप में पहचाने जाते थे। उनके लिए प्राणदण्ड जैसी कठोर सजा की व्यवस्था नहीं थी। आध्यात्म एवं बौद्धिक क्षेत्र में अग्रणी होने के कारण मुगलकालीन समाज में ब्राह्मणों को विशेष स्थिति प्राप्त थी। प्राचीनकाल में मनु ने लिखा है कि 'एक ब्राह्मण का जन्म लेना ही धर्म का अविनाशी अवतार है, क्योंकि वह धर्म का साधक है और मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ है। एक ब्राह्मण जन्म से ही पृथ्वी पर श्रेष्ठतम है, सभी जीवधारियों का प्रभु है क्योंकि वह धर्मरूपी कोष की रक्षा करता है। जगत में जो भी अस्तित्व में है वह इन सब में योग्य है। ब्राह्मणों का उल्लेख करते हुए मुगलकालीन इतिहासकारों ने लिखा है कि ब्राह्मण सर्वोच्च जाति के माने जाते हैं जिनके विषय में हिन्दू ग्रंथों में कहा गया है कि उनकी उत्पत्ति 'ब्रह्मा' के सिर से हुई है और चूँकि ब्राह्मण ही 'परमात्मा' की शक्ति का दूसरा नाम है तथा सिर ही शरीर का सर्वोच्च भाग है, अतः ब्राह्मण ही समस्त जातियों का सिरमौर है। इसलिए हिन्दू उन्हें मानव जातियों में सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। परम्परागत आधार पर उनका कार्य पठन–पाठन, अध्ययन एवं मनन करना था। अतः ब्राह्मणों का इस समय कवि, दार्शनिक, न्यायवेत्ता आदि होना स्वाभाविक था। मुगलकीलन धर्म पर ब्राह्मणों को पूर्ण अधिकार था। वह केवल जनता के धार्मिक प्रयोजनों का प्रबन्ध ही नहीं करता वरन् ईश्वर और मानव के बीच मध्यस्थता भी करता था। मुगलकलीन इतिहासकारों ने आगे लिखा है कि केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय ही वेदाध्ययन कर सकते थे। अतः वह ही मोक्ष प्राप्त करने के योग्य हैं। मुगलकालीन ब्राह्मणों का भी जीवन चार आश्रमों में विभक्त है।[4]

मुगलकालीन लेखक ने लिखा है कि सात वर्ष की आयु के बाद ब्राह्मणों का जीवन चार भागों में विभक्त है। प्रथम भाग आठ वर्ष की आयु से प्रारम्भ होता है। जब ब्राह्मण बच्चे को 'गुरू' आकर शिक्षा देते हैं, उसके कर्तव्यों पर उपदेश देते हैं कि आजीवन वह उन उपदेशों का अनुसरण करे। उसके बाद उसे कटिसूत्र बाँधते है तथा एक जोड़े यज्ञोपवीत से युक्त करते हैं। अबुल फजल एक ब्राह्मण के जीवन के प्रथम आश्रम के विषय में इस प्रकार लिखता है कि ब्राह्मण के जीवन की यह अवधि पच्चीस वर्ष की आयु तक रहती है या विष्णुपुराण के अनुसार अड़तालिस साल तक। उसे एक संयमित जीवन व्यतीत करना पड़ता है। यह भूमि पर सोता है, वेद का अध्ययन और उसकी व्याख्या करता है, आध्यात्मिक शास्त्र तथा धर्मशास्त्र का निरुपण करता है। जिस गुरू से वह इन विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करता था। उसकी दिन–रात सेवा करता था। मुगलकालीन समय में ब्राह्मणों को ज्योतिषशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। फलतः सामान्य जनता के अलवा राजा लोग भी कोई कार्य करने के पहले पुरोहित को बुलवाकर मुहूर्त निकलवाते थे। ब्राह्मणों के जीवन के द्वितीय आश्रम का उल्लेख करते हुए अबुल फजल ने लिखा है कि ब्राह्मणों के जीवन की दूसरी अवधि पच्चीसवें वर्ष की आयु से लेकर पचासवें वर्ष तक होती है या विष्णुपुराण के अनुसार सत्तरवें साल तक। गुरू उसे विवाह करने की आज्ञा देता है। यह विवाह करता है, अपनी गृहस्थी बसाता है तथा संतान की अभिलाषा पूरी करता है। ब्राह्मणों के जीवन के तीसरे आश्रम के विषय में अबुल फजल ने लिखा है कि ब्राह्मणों के जीवन की तीसरी अवधि पचास साल की आयु से लेकर पचहत्तर या विष्णुपुराण के अनुसार नब्बे वर्ष की आयु तक रहती है। वह सन्यासी हो जाता है, गृहस्थी का त्याग कर देता है और अपनी गृहस्थी तथा पत्नी को भी अपनी संतान को सौंप देता है, यदि उसके संग जंगलों में नहीं जाना चाहती। वह आबादी से दूर निवास करता था तथा अपना जीवन पुनः उसी प्रकार व्यतीत करता था जिस प्रकार जीवन के प्रथम आश्रम में व्यतीत करता था। ब्राह्मण की चौथी और अंतिम अवस्था का उल्लेख करते हुए अबुल फजल ने लिखा है कि चौथी अवधि जीवन की समाप्ति तक रहती है। वह गेरूआ वस्त्र धारण करता था। उसके हाथ में एक छड़ी होती थी। वह सदा समाधिस्थ रहता है, वह मैत्री एवं क्रोध से निवृत्त हो जाता है। वह किसी से भी वार्तालाप नहीं करता।[5]

अबुल फजल ने ब्राह्मण के सामान्य धर्म के विषय में लिखा है कि एक ब्राह्मण के समस्त जीवन के सामान्य कर्तव्य है, पुण्य कार्य करना, भिक्षा ग्रहण तथा शिक्षा दान। ब्राह्मण जो कुछ भी स्वयं दान करता है वह पितृों से प्राप्त करता है। निरंतर अध्ययन करना, यज्ञों का विधान करना तथा जिस अग्नि को जलाता है, उसकी रक्षा करना उसका कर्तव्य है। उसे एक अग्नि को नैवेद्य चढ़ाना, उसकी पूजा करना तथा उसे बुझने से बचाना चाहिए ताकि मरणोपरान्त वह इसी अग्नि को जलाया जा सके। इसे 'होम' कहते है। ब्राह्मण ग्रहों की गणना काफी स्पष्टता से करते हैं एवं काफी सीमा तक भविष्यवाणी करने का भी कार्य करते है शहर में प्रायः ऐसे सम्मानित एक या दो व्यक्ति अवश्य होते हैं। वास्तव में मुगल कालीन सम्राट दरबार में एक भविष्यवक्ता को अवश्य रखता है, जिनकी सभी भविष्यवाणियाँ या उनमें से अधिकांश काफी सही प्रमाणित होती है। परिणामतः ब्राह्मणों ने काफी सम्मान हासिल कर लिया था एवं बड़े लोगों या सभी मुसलमानों पर उन्होंने ऐसा प्रभाव स्थापित कर लिया कि वह अपनी यात्रा तब तक प्रारम्भ नहीं करते जब वह यह पूछताछ नहीं कर लेते हैं कि यात्रा आरम्भ करने का मुहूर्त कौन सा दिन एवं समय है। इसके परिणामस्वरूप ऐसे बहुत से ज्योतिष सड़क पर अक्सर हाथ में किताब लिए नजर आते हैं एवं लोगों को उनके भाग्य के बारे में बताते है। यद्यपि उनकी भविष्यवाणियाँ का बहुत कम महत्व है, लेकिन गरीब उन पर विश्वास करते हैं क्योंकि वह सदैव शानदार उपाय निकालते हैं एवं उनके प्रश्नों के उत्तर काफी गोलमाल रहते है। मुगलकालीन समकालीन इतिहास और शिलालेखों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों मे अनेक जातियाँ उत्पन्न हो गई थी। प्राचीन काल के ब्राह्मण गोत्र परिवार के आधार पर विभाजित थे। उनमें व्यवसाय, ज्ञान, नैतिक शुद्धता, कर्म, प्रदेश तथा। परिवार के आधार पर विभाजन था, जिसके कारण अनेक श्रेणियाँ, उपश्रेणियाँ उत्पन्न हो गयी थीं। इस काल में ब्राह्मणों का विभाजन प्रदेशों के आधार पर हुआ मुगलकालीन समय में धर्मशास्त्रों व निबन्धों मे ब्राह्मणों को व्यवसाय के अनुसार विभाजित किया गया। अब क्षत्रिय ब्राह्मण जो कि युद्ध पर जाते रहते हैं, वैश्य ब्राह्मण जो कि कृषि करते, पशुपालन करते हैं तथा व्यापार करते है, शूद्र ब्राह्मण जो कि लाख, नमक, मधु, मांस तथा कुछ विशेष प्रकार के रंग बेचते थे और निषाद ब्राह्मण जो कि चोरी और डकैती करते थे, ऐसी चर्चा मुगलकालीन इतिहास में की गई है।[6]

3. क्षत्रिय

मुगलकालीन भारतीय सामाजिक विरासत में अगला स्थान क्षत्रियों का आता है। सातवीं व आठवीं शताब्दी से क्षत्रियों का उत्कर्ष हुआ और 16वीं शताब्दी के अन्त तक उनकी 36 जातियों ने उत्तरी भारत में ख्याति प्राप्त कर ली थी। अबुल फजल उनके लिए 'राजपूत' शब्द का प्रयोग नहीं करते थे। अबुल फजल ने लिखा है कि अगली जाति में क्षत्रिय आते है, जिनके विषय में कहा जाता है कि ब्रह्मा की बाहु और उसके कन्धों से इनकी उत्पत्ति हुई। इनकी मर्यादा ब्राह्मणों से अधिक नीचे नहीं है। अबुल फजल ने आगे लिखा है कि 'क्षत्रिय वेद पढ़ता और सीखता है पर किसी को इसकी शिक्षा नहीं देता क्षत्रिय प्रजा पर शासन करता तथा उनकी रक्षा करता है क्योंकि इसी कार्य के लिए क्षत्रियों की सृष्टि हुई है। वह तीन इकहरे सूत का तथा रूई की एक इकहरी डोरी का 'यज्ञोपवीत' धारण करता है। बारह वर्ष की अवस्था में उसका यह संस्कार सम्पन्न होता है। यद्यपि एक पुरोहित के कार्य करने का अधिकार उसे प्राप्त नहीं था तथापि पौराणिक संस्कार सम्पन्न करने की क्षत्रिय को अनुमति थी। अधिकतर क्षत्रिय लोग

शक्ति की पूजा करते थे। राजपूतों में परस्पर भोज प्रचलित था। वह ब्राह्मणों के यहाँ भोजन कर सकते थे। राजपूत अपनी ही जाति में विवाह करते थे। राजपूतों में बहुविवाह का प्रचलन था, परन्तु स्त्रियों को सम्मान प्राप्त था। स्त्रियों को अपना पति चुनने की स्वतत्रंता थी। विवाह तथा समस्त धार्मिक अनुष्ठान ब्राह्मणों द्वारा ही सम्पन्न होते थे। उन्हें वेद पढ़ने की अनुमति नहीं थी परन्तु यज्ञ करा सकते थे। क्षत्रियों के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए अबुल फजल ने लिखा है कि क्षत्रिय क्योंकि हिन्दू कहते हैं कि आदि में शासन और युद्ध के कार्य ब्राह्मणों के हाथ में थे। किन्तु देश अव्यवस्थित हो गया क्योंकि वह अपनी धर्मसंहिता के दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार शासन करते थे जो प्रजा के अनिष्टशील तथा उच्छश्रृंखल तत्त्वों के समक्ष असम्भव सिद्ध हुआ। उनके हाथों से धार्मिक प्रशासन छिन जाने को था। अतः उन्होंने अपने धर्म स्वामी के समक्ष हीनता प्रकट की। इस पर ब्रह्मा ने क्षत्रियों को वहीं कार्य सौंपा जो अब उनके पास है जबकि शासन और युद्ध के कर्तव्य क्षत्रियों के हाथों में आया हिन्दुओं के धर्म ग्रंथों के आधार पर अबुल फजल ने लिखा है कि क्षत्रिय को ह्रदय आंतकित करने वाला, वीर और उच्च विचारवाला, भाषणों के लिए तैयार तथा उदार होना चाहिए। उसे आपत्तियों से निश्चित होकर केवल उन महान कार्यों की पूर्ति की अभिलाषा करनी चाहिए जिनसे चिर–आनन्द की प्राप्ति हो।[7] सोलहवीं शताब्दी में मुगल इतिहासकारों ने लिखा है कि क्षत्रिय दो वर्गों में बटे हुए थे–सवकुफरिया तथा कहरिया जातियों में विभाजित थे। अल्तेकर के अनुसार वह दो शब्द वास्तविक संस्कृत के शब्द सत्क्षत्रिय तथा क्षत्रिय है। सोलहवीं शताब्दी तक इन दोनों शब्दों का प्रयोग समकालीन साहित्य तथा शिलालेखों में मिलता है। प्राचीन मनु, पराशर, हरित, बौद्धायन, देवल, लक्ष्मीधर आदि के अनुसार शासकों के रूप में उनका प्रमुख कर्तव्य शास्त्र धारण करना, देश पर न्यायपूर्वक शासन करना, है प्रतिवादियों के मध्य झगड़ों को निबटाना तथा वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना था।

पेलसर्ट ने लिखा है कि हिन्दुओं के दूसरे वर्ग का नाम राजपूत है। यह लोग पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते थे एवं सर्वश्रेष्ठ सैनिक होते है। निर्भीक, साहसी, दृढ़ प्रतिज्ञ एवं स्वामीभक्त होते है। घुड़सवार या पैदल सभी के अपने छोटे भालों, ढाल, तलवार एवं करार को छोड़कर कोई हथियार नहीं है लेकिन यह लड़ाई के मैदान में पीछे हटने में एवं आक्रमण में तेज है। वह अपने जीवन की बहुत कम परवाह करते थे। मुगल काल में अकबर की उदारवादी नीतियों के कारण हिन्दू समाज में क्षत्रिय जाति ने समाज में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी मुगल सम्राटों ने उनके महत्त्व को समझा था और मुगल राजपूतों को मुगल साम्राज्य में उन्हें बड़े–बड़े मनसब प्रदान कर राजपूतों की वीरता और योग्यता का भली प्रकार उपयोग किया था।[8]

4. वैश्य

मुगलकालीन भारतीय समाज में कृषि, पशुपालन एवं व्यवसाय का कार्य प्राचीन काल से वैश्यों के ही हाथ में रहा। मुगलकालीन देश और समाज का आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने का कार्य वैश्यों को दिया गया था। उन्होंने इस कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया था। हिन्दू समाज के प्रथम दो वर्गों की भांति वैश्य भी व्यवसाय पर विभाजित थे। वैश्यों में भी अनेक जातियाँ व उपजातियाँ उत्पन्न हो गई थीं। 15वीं शताब्दी तक वैश्यो व शूद्रों में कोई अंतर नहीं रह गया था। बाबर ने उनमें कोई अंतर नहीं देखा। किन्तु इस प्रकार की कोई बात नहीं थी। वैश्य के यज्ञोपवीत में सूत के दो धागे होते थे। शूद्र का यज्ञोपवीत मलमल के धागे से बना होता था। जबकि वैश्यों के लिए नमक, माँस, दही, तलवारें तथा पनीर, पानी तथा मूर्तियाँ बेचना वर्जित था, परन्तु शूद्र सभी प्रकार की वस्तुएँ बेच सकते थे। अबुल फजल के अनुसार वैश्यों का कर्तव्य खेती करना भूमि को जोतना, पशुओं का पालन करना, ब्राह्मणों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना इत्यादि था। नौवीं तथा दसवीं शताब्दी के राजनीतिक एव आर्थिक पतन के कारण वैश्यों की स्थिति में महान परिवर्तन आया। उनमें तथा शूद्रों में काई विशेष अंतर न रहा। वैश्य स्वभाव से डरपोक होते थे वैश्य अपने पास कोई शस्त्र नहीं रखते थे। किसी भी प्राणी की हत्या करना वैश्य पाप समझते थे। माँस भक्षण नहीं करते थे मुख्यतः शाकाहारी होते थे। सम्भवतः इन पर जैनियों का प्रभाव था। मनूची के अनुसार राजस्व विभाग में वैश्यों की नियुक्ति को मुगल शासक पसंद करते थे। इनमें विधवा विवाह प्रचलित नहीं था। एक विधवा के जवान होते हुए भी उसे विवाह की अनुमति नहीं थी। वैश्यों में इस समय बीरा उपजातियाँ पायी जाती थी। पूरे मुगलकाल में राज्य की आर्थिक स्थिति को मजबूती का कारण सिर्फ यही वैश्य होते थे।[9]

5. शूद्र

मुगलकालीन भारत में सामाजिक आचार–विचार, व्यवहार और कर्म में हिन्दू समाज का सबसे निम्न वर्ग शूद्रों का था। अधिकार और कर्तव्य की दृष्टि से यह वर्ग मुगलकालीन समाज उपेक्षित था। हिन्दू धर्मशास्त्रों में बताया गया ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा करना शूद्रों का सामाजिक व धार्मिक कर्तव्य है। अधिकार–विहीन सेवा और धर्म में सामाज का यह बहुसंख्यक वर्ग मानवीय अधिकार और समानता से पूर्णतः वंचित था। उस जाति में अनेक तत्त्व थे, जैसे श्रमिक, कृषक, साधारण कृषक, शिल्पकार, मजदूर, नौकर–चाकर तथा सभी लोग जिनका व्यवसाय बहुत ही सामाजिक जो आवश्यक होता था। उनकी अनेक जातियां व श्रेणियाँ थी। बी0एन0एस0 यादव ने अभिदान चिन्तामणि, हेमचन्द्र की कृति देसीनाममला तथा यादव प्रकाश की विजयन्ती के आधार पर उन सभी व्यावसायिक समुदायों का उल्लेख किया है जो कि शूद्र कहे जाते थे।[10] उदाहरणार्थ मजदूर, लोहार, पत्थर काटने वाले, शंख

बनाने वाले, कुम्हार, जुलाहे, बढ़ई, चर्मकार, तेली, ईंट बनाने वाले, स्वर्णकार, तांबे का काम करने वाले, जौहरी, चित्रकार, बोझा ढोने वाले, भिश्ती, दर्जी, धोबी, कलाल, मदिरा बेचने बाले, माली, भटुआ, नट, घूम—घूम कर वस्त्रों के विक्रेता, शिकारी, चंडाल, नर्तकी आदि आते थे। व्यवसाय के आधार पर शूद्रों की जातियों की सूची बहुत लम्बी है। उत्तरी भारत के अनेकों प्रदेशों में शूद्रों की अनेक जातियाँ व उपजातियाँ थी। शूद्रों के धन्धें के अनुसार ही उनका जीवन स्तर एवं सामाजिक स्थिति थी। मेधातिथि के समय में उनकी दशा में सुधार हुआ। शूद्र परिवार में केवल जन्म लेने से ही उसके स्तर का निर्धारण होना बन्द हो गया। विदेशी यात्री अलबरूनी लिखता है कि 'शूद्र ब्राह्मण के नौकर के सदृश है जो उसके कार्यों की देख—रेख और उसकी सेवा करता है। यदि वह नितान्त दरिद्र होते हुए भी यज्ञोपवीतहीन नहीं रहना चाहता तो वह केवल सन का यज्ञोपवीत धारण करता था। प्रत्येक ऐसे कर्म, जिस पर ब्राह्मण का विशेषाधिकार है, यथा प्रार्थना, वेदपाठ और होम उसके लिए इस सीमा तक निषिद्ध है कि यदि उदाहरणार्थ यह प्रमाणित हो जाये कि किसी शूद्र या वैश्य ने वेद का उच्चारण किया है तो ब्राह्मण द्वारा वह राजा के सम्मुख दोषी ठहरया जाता है और राजा उसकी जीभ काट डालने की आज्ञा देते है। परन्तु ईश्वरोपासना, धर्मनिष्ठा के कार्य और दान देने पर उसे रोक नही है।[11] अबुल फजल आगे लिखता है कि शूद्र के बाद उन लोगों का स्थान है जिन्हे 'अन्त्यज' कहते हैं जो विभिन्न प्रकार के सेवा कार्य करते है। जिनकी गणना किसी भी जाति में नहीं होती। किसी विशेष शिल्पकार या पेशा करने वाली के रूप में उनकी गणना होती थी। इस काल में शूद्रों के कई वर्ग व उपवर्ग उत्पन्न हो गये। बैजयन्ती के अनुसार उनकी 64 जातियाँ थी। कुछ मुगलकालीन इतिहासकारों ने जाति प्रथा की उपयोगिता सिद्ध करने का प्रयास किया है। के०एम० अशरफ के अनुसार हिन्दू समाज को समीप रखने में जाति प्रथा का विशेष योगदान रहा है। परन्तु पूर्व व्यवस्था नवीन परिरिथतियों के अनुरूप अपेक्षित परिवर्तन न कर सकी जिनके परिणाम स्वरूप मुगलकालीन हिन्दू समाज पर उसका विनाशकारी प्रभाव पड़ा।[12]

मुगलकालीन जातीय आधार पर संगठित हिन्दू समाज में प्रायः सभी जन्म के अनुसार कर्म करते थे। मुसलमानों के आक्रमण के समय देश की सुरक्षा का भार राजपूतों पर आ पड़ा। राजपूतों ने जाति प्रथा और कर्म निर्णय के अनुसार अन्य जातियों को सेना में स्थान नहीं दिया। परिणाम स्वरूप, सम्पूर्ण जनता में वांछित राष्ट्रीयता की भावना का विकास न हो सका। वैश्य लोग विद्या में पारंगत, युद्ध काल में दक्ष होते हुए भी न ही वेद का अध्ययन कर सकते थे और न ही सैनिक सेवा। इस प्रकार की जाति व्यवस्था से समाज का विकास सम्भव नहीं था और न ही अपनी कार्यकुशता एवं दक्षता का प्रवर्तन करने का लोगों को अवसर मिल सकता था।

6. निष्कर्ष

मुगलकाल के मुस्लिम शासन का पहला गम्भीर प्रभाव ब्राह्मणों की स्थिति और उनके कार्यों पर भी पड़ा। अब ब्राह्मण अपने विद्यानुराग से पर्याप्त धन अर्जित नहीं कर पाते थे इसलिए नवीन स्मृतियों में यह व्यवस्था कर दी गई कि वह श्रमिक लगाकर खेती—बारी कर सकते थे। आगे उस बात को और भी स्पष्ट कर दिया गया कि सभी जातियों के लोग खेती—बारी और व्यापार कर सकते है। उसी प्रकार शूद्र जाति के लोग पुराणों का पाठ सुन सकते थे। शूद्र लोग वर्जित वस्तुओं का व्यापार भी कर सकते थे। इनमे मांस बेचना भी शामिल था। यह परिवर्तन व्यवसायगत था, परन्तु वर्ण व्यवस्था की मूल भावना अभी भी बनी रही। विदेशी यात्री मनूची लिखता है कि अछूत आबादी वाले शहरों और इलाकों से बाहर रहते थे। उन्हें मन्दिरों में प्रवेश की अनुमति नहीं थी। वह उच्च जाति के हिन्दुओं के कुंए से पानी नहीं खीच सकते थे। इनमें विधवा विवाह हो सकता था। निःसंदेह हिन्दू समाज मे शूद्रों को बड़ी ही हीन व गंदी दृष्टि से देखा जाता था तथा उनके साथ अभद्र व्यवहार किया जाता था। मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ—साथ इसने अपने पूर्व के लचीलेपन को और संकुचित कर दिया था। 18वीं शताब्दी के पूर्वान्ह तक सम्पूर्ण उत्तरी भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना स्थापित हो गई थी। तुर्क तथा मुगल स्थायी रूप से भारत में आकर बस गये थे। प्रसिद्ध इतिहासकार का कहना था कि राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित हो जाने का परिणाम यह निकला कि ब्राह्मणों के हर प्रकार के उन विशेषाधिकारों का अन्त हो गया जिनका उन्होंने पूर्ववती शासनों में स्वागत किया था। इधर निम्न वर्णों को जिन्होंने नवागंतुकों का हृदय से उपयोग किया था। अपनी भौतिक स्थिति को ऊँचा उठाने का अवसर मिल गया। उनमें से कुछ ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इससे उन्हें एक उच्च सामाजिक स्तर प्राप्त हुआ। हिन्दू समाज के उपेक्षित तथा पद्दलित वर्ग के अधिकांश लोग सामाजिक समानता के अधिकार को प्राप्त करने के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार करने लगे। युसुफ हुसेन के अनुसार जुलाहे, जिन्हें हिन्दुओं की जाति व्यवस्था में निम्न स्थान दिया गया था। पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सामूहिक रूप से इस्लाम धर्म स्वीकार करके उत्तरी भारत में मुसलमानों के अधिकार से लाभ उठाया। ताराचन्द्र ने लिखा है कि न केवल हिन्दू धर्म, कला, इतिहासकार तथा विज्ञान ने इस्लामी तत्त्वों को ग्रहण किया बल्कि हिन्दू सभ्यता की आत्मा तथा हिन्दू मस्तिष्क पूर्णरूप से परिवर्तित हो गया। दोनों के सम्मिश्रण से एक नवीन सभ्यता का जन्म हुआ जिसे 'इण्डो—इस्लामिक' सभ्यता की संज्ञा दी गई।

CONFLICT OF INTERESTS

None

ACKNOWLEDGMENTS

None

सन्दर्भ गन्थ सूची

ताम्रपत्र फारसी भाषा में राजस्थान राज्य अभिलेखागार की आर्ट गैलरी में उपलब्ध है, पृष्ठ 23
अकिल खान, वएकियात–ए–आलमगीरी प्रकाशक भारतीय इतिहास कांग्रेस पृष्ठ 89
डा० यदुनाथ सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, 5 भागों में, प्रकाशन, कलकत्ता, पृष्ठ 114
सईद अनीस जहॉन : औरंगजेब इन मुन्तखब–उल–लुवाव, प्रकाशन अलीगढ़ ए.एम.यू. पृष्ठ 125
बाबर (आत्मकथा) तुजुक–ए–बावरी, अनुवादक 2. एस. वेवरीज भाग 1 व 2 प्रकाशक दिल्ली पृष्ठ 321
रघुवीर सिंह, मनोहर सिंह राणावत शाहजहॉनामा प्रकाशन दि मैकमिलन कम्पनी पृष्ठ 233
मुंशीजान आलम, जयपुर की तारीख राजस्थान राज्य अभिलेखागार, राजस्थान, पृष्ठ 245
खैरुद्दीन : इबारतनामा, ले० मुहम्मद खैरुद्दीन इलाहबादी, बम्बई पृष्ठ 231
खाफी खाँ : मुन्तखव–उल–लुबाव, अनुवादक इलियट और डाउसन पृष्ठ 124 .
लाहौरी : बादशाह नामा, खण्ड प्रथम, ले० मुल्ला अब्दुल हामिद लाहौरी पृष्ठ 234
गोटलिइब जॉन कोहनय; अंग्रे. अनु, डॉ० यदुनाथ सरकार,, पृष्ठ 54
ईश्वर दास : फतुहात–ए–आलमगीरी ले ईश्वरदास नागर सीतामऊ प्रति पृष्ठ 78